IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

जैन धर्म में जीव और अजीव की अवधारणा

[1] डॉ० अरविन्द त्रिपाठी

[1] सहायक आचार्य

[1]प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,

[1] रजत महिला महाविद्यालय, अंबेडकर नगर

सारांश

संसार में जीव और अजीव ये दो मुख्य तत्त्व होते हैं। जब इनमें सम्पर्क होता है तो एक ऐसी शक्ति का निर्माण होता है जिसके कारण जीव की नाना प्रकार की दशाओं का अनुभव होता है। जैन दर्शन के सात तत्त्व है जीव, अजीव, आश्रय, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इनमें जीव और अजीव इन दोनों तत्वों को 'द्रव्य' कहते हैं। द्रव्य वह है जो अपने गुणों और परिवर्तनों में और उनके रहते हुए भी अपनी स्थिरता को नहीं खोता। जैन मत में प्रत्येक अवस्था के दो स्वरूप होते हैं 'भाव' और 'द्रव्य'। अव्यक्त की दशा को 'भाव' कहते है और व्यक्त की अवस्था में उसे 'द्रव्य' कहते हैं। जीव चेतन है और अजीव अचेतन है' एक आत्मा है और दूसरा अनात्मा। दूसरे में पुद्गल के अलावा देश और काल भी आ जाते हैं।

प्रस्तावना

जीव तत्व- आत्मा या चेतन को संसार की दशा में 'जीव कहते हैं। इसमें 'प्राण' होता है जो नानाविध अनेक पदार्थों को जानता है और उनका प्रत्यक्ष अनुभव करता है, सुख की इच्छा करता है और दुःख से भय करता है। इस प्रकार के भय से अथवा किसी का नुकसान पहुँचाने के विचार से कर्म करता है और उसके फलों का उपभोग करता है, वह जीव है।

जैन सिद्धांत में जीव का मुख्य लक्षण उपयोग माना गया है। उपयोग के दो भेद हैं दर्शन और ज्ञान। सामान्य भाषा में दर्शन का अर्थ होता है किसी पदार्थ को नेत्रों द्वारा देखने की क्रिया। शास्त्रीय दृष्टि से दर्शन का अर्थ है- जीवन व प्रकृति सम्बन्धी व्यवस्थित ज्ञान, जैसे सांख्य, वेदान्त या जैन व बौद्ध दर्शन। किन्तु जैन सिद्धान्त में जीव तत्त्व का अर्थ होता है- आत्म चेतना। प्रत्येक जीव में अपनी सत्ता के अनुभव की शक्ति का नाम दर्शन है और बाह्य पदार्थों को जानने-समझने की शक्ति का नाम है ज्ञान।

जैन ग्रन्थों में जीव शब्द का प्रयोग कई अर्थों में होता है और यह जीवन प्राणशक्ति, आत्मा एवं चेतन का द्योतक है। जीव अनुभव का नाम है जो कि बाह्य जगत् के भौतिक पदार्थों से सर्वथा भिन्न है।

इन्द्रियों की संख्या के आधार पर जीवों को विभागों में बाँटा गया है पाँच इन्द्रिय वाले जीव सबसे ऊँचे हैं। अर्थात् जिसके पास स्पर्श, स्वाद, गन्ध और श्रवण के लिए पाँच भिन्न-भिन्न इन्द्रियाँ हैं और सबसे निम्न श्रेणी के जीव वे हैं जिनके पास एक ही इन्द्रिय है अर्थात् वे केवल स्पर्श का अनुभव कर सकते हैं। इन दोनों श्रेणियों के मध्य वे जीव है जिनके पास क्रमशः दो, तीन और चार इन्द्रियों हैं। उच्च श्रेणी के जीव अर्थात् मनुष्य और देवता एक छठीं इन्द्रियाँ भी रखते हैं जिसे मन कहते हैं और इन्हें विवेक सम्पन्न कहा जाता है। आत्मा इन्द्रियो एवं शरीरों से सर्वथा भिन्न एक चेतना स्वरूप सत्ता है। जीवात्मा अपने गुण-ज्ञान से भिन्न नहीं है और चूँकि ज्ञान के साधन मिन्न-भिन्न प्रकार के हैं इसलिए बुद्धिमान व्यक्तियों ने इस विद्यमान जगत् को भी नानाविध माना है।

भारतीय दार्शनिक वनस्पतियों में जीव मानते हैं किन्तु जैन विचारकों ने इस कल्पना को एक अद्भुत रूप में विकसित किया है। ऐसे पौधे जिनमें एक ही जीव है। सदा ठोस रूप वाले होते हैं और ये संसार के ऐसे ही भागों में पाये जाते हैं जो वास याग्य है। परन्तु ऐसे पौधे जिनमें से प्रत्येक में अनेक वानस्पतिक जीवों की बस्ती है, सूक्ष्म हो सकते हैं और इसीलिए अदृश्य है एवं संसार के समस्त भू-भागों में बैंटे हुए हो सकते हैं। इन सूक्ष्म पौधों को 'निगोद' कहते हैं निगोदों से मिलकर एक गोलाकार वृत्त बनता है और संसार उनसे भरा पड़ा है। जैन कल्पना का एक विशिष्ट स्वरूप है कि जैनी अपने सिद्धान्त के अनुसार अंगरहित पदार्थों में यथा धातुओं एवं पत्थरों तक में आत्मा के अस्तित्व को मानते है।

अजीव तत्त्व- अजीव तत्त्व के दो भेद किये गये हैं रूपी और अरूपी। रूपी द्रव्य को पुद्गल कहा गया है। अरूपी के पाँच भेद किये गये धर्म, अधर्म, आकाश, काल। स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण इन चारों से जो युक्त है वह रूपी है। अस्तिकाय का अर्थ होता हैप्रदेश बहुत्व। 'अस्ति' और 'काय' इन दोनों शब्दों से 'अस्तिकाय' बनता है। 'अस्ति' का अर्थ है विद्यमान होना और 'काय' का अर्थ है अनेक प्रदेशों का समूह। जहाँ अनेक प्रदेश का समूह होता है वह अस्तिकाय कहा जाता है।

पुद्गल रूपवान द्रव्य को पुद्गल कहते हैं जितने भी मूर्तिमान् पदार्थ विश्व में दिखायी देते हैं वे सब पुद्गल द्रव्य के ही नाना रूप हैं। पुद्गल शब्द में दो पद हैं- 'पुद' और 'गल'। 'पुद्' का अर्थ होता है पूरण अर्थात् वृद्धि और 'गल' का अर्थ होता है गलन अर्थात् हास। जो द्रव्य पूरण और गलन द्वारा विविध प्रकार से परिवर्तित होता है वह पुद्गल है। पुद्गल के मुख्य चार धर्म होते हैं- स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण। पुद्गल के प्रत्येक परमाणु में ये चारों धर्म होते है। जैन दर्शन में इसके बीस भेद किये जाते हैं बौद्ध दर्शन में पुद्गल शब्द आत्मा के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

धर्म- अजीव तत्त्व में धर्म दूसरा तत्त्व है। यह अरूपी और समस्त लोक में व्याप्त है। इसी द्रव्य की व्याप्ति के कारण जीवों व पुद्गलों का एक स्थान से दूसरे स्थान में गमन सम्भव होता है, जिस प्रकार की जल मछली के मगनागमन का माध्यम बनता है। धर्म का लक्षण बताते हुए राजवर्तिका कहते हैं कि स्वयं क्रिया करने वाले जीव और पुद्गल की जो सहायता करता है, वह धर्म है।

अधर्म- अधर्म स्थिरता का स्वभाव है। यह भी इन्द्रिय गुणों से विहीन है। अशरीरी या अमूर्त है और लोकाकाश के समान विस्तार वाला है। जिस प्रकार गति में धर्म कारण हैं उसी प्रकार स्थिति में अधर्म कारक हैं।" जीव और पुद्गल जब स्थितिशील होने वाले होते हैं तब अधर्म द्रव्य उसकी सहायता करता है।

आकाश- जो द्रव्य जीव, पुदगल, धर्म, अधर्म और काल को स्थान देता है वह आकाश है। यह सर्वव्यापी है, एक है, अमूर्त है और अनन्त प्रदेश वाला है।

इसमें सभी द्रव्य पाये जाते हैं। यह अरूपी है। आकाश के दो विभाग हैं- लोकाकाश और अलौकाकाश। जहाँ पुण्य और पाप का फल देखा जाता है वह लोक है। लोक का जो आकाश है वह लोकाकाश है।

काल परिवर्तन का जो कारण है उसे काल कहते हैं इसका स्वरूप दो प्रकार से निरूपण किया गया है एक निश्चयकाल और दूसरा व्यवहार काल। निश्चय काल अपनी द्रव्यात्मक सत्ता रखता है और वह धर्म और अधर्म द्रव्यों के समान समस्त लोकाकाश में व्याप्त है। पुद्गल के एक परमाणु को आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाने के लिए जितना अवकाश लगता है, वह व्यवहार काल का एक समय है। ऐसे असंख्यात समयों की एक आवलि, संख्यात आवलियों का एक उच्छ्वास, सात उच्छ्वासों का एक स्तोक, सात स्तोंके का एक लव, 38½ लवों की एक नाली, 2 नालियों का एक मुहूर्त और 30 मुहूर्त का एक अहोरात्र होता है। जिस प्रकार यह व्यवहार-काल का प्रमाण उत्कृष्ट अनन्त कहा गया है, उसी प्रकार आकाश के प्रदेशों का समस्त द्रव्यों के अविभागी प्रतिच्छेदों का, एवं केवल ज्ञानी के ज्ञान का प्रमाण भी अनन्तानन्त कहा गया है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि समस्त विश्व का विभाजन जीव एवं अजीव इन्हीं दो वर्गों में हो सकता है। छः द्रव्यों में से जीव व पुद्गल मुख्य है। शेष सब या तो उनके व्यापारों के मूल श्रोत हैं अथवा उनकी प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप है। जीव और पुद्गल सक्रिय द्रव्य है जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक गति करते हैं। जीव और अजीव के मध्य संयोजक कड़ी कर्महै। जीव और अजीव के साथ कर्मों की उत्पत्ति उनका फल देना एवं नष्ट होना जैनमत के तत्त्व अथवा सिद्धान्त है। जीव एवं अजीव प्रधान तत्त्व है जो प्रायः संयुक्त रहते हैं। जीव का अजीव से नितान्त स्वतन्त्र हो जाने का नाम ही मोक्ष है।

सन्दर्भ-सूची

1- हीरामन जैकोबी, जैनसूत्र सेक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट, भाग-2 पृ० 11. आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1879

2-बकिलीवाल पन्नालाल, पी चास्तिकाय समयसार 89 और 11, परमशृहत प्रभाकर मण्डल, 1905.

3-सिद्धान्तिदेवा नेमिचन्द्र, द्रव्यसंग्रह 24, श्री चन्द्रप्रभा दिगम्बर जैन मन्दिर ट्रस्ट 161, भुलेश्वर, बम्बई। सति जदो तेणेद, अत्थिति भणंति जिणवरा जम्हा । काया युव बहुदेसा तम्हा काया या अत्थिकाया य।।

4- जैन, महेन्द्र कुमार, तत्त्वार्थ राजवर्तिका, 5.1.24, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोज नई दिल्ली - 1100031.

5-बकिलीवाल पन्नालाल, पो वास्तिकाय समयसार, 94, परमशृहत प्रभाकर मण्डल, 1905.

6- गंगासा भोरे धन्यवाद, नियमसार 30, महावीर ज्ञानोपासना समिति, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

7-संघवी, सुखलाल, तत्त्वार्थसूत्र 2/2 जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, हिन्दूचू विश्वविद्यालय, बनारस-६, 1952

8-जैन हीरालाल, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान 1962, जवाहर कला केन्द्र, जयपुर, राजस्थान।

9-डॉ० राधाकृष्णन, द्रव्य संग्रह 297, श्री चन्द्रप्रभा दिगम्बर जैन मन्दिर ट्रस्ट 161, भुलेश्वर, बम्बई।